अगस्त १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्म वाणी

कामतो जायते सोको, कामतो जायतेयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको, कुतो भयं?

कामवासना से शोक उत्पन्न होता है, कामवासना से भय। कामवासना से मुक्त हुए व्यक्ति को शोक नहीं, फिर भय कहां?

धम्मपद १६/७

आत्म-कथन

एक नया मोड़

सितम्बर, १९५५ में विपश्यना का पहला शिविर पूरा करने के बाद से जीवन में एक नया मोड़ आना शुरू हो गया। विपश्यना का व्यावहारिक पक्ष बड़ा सबल था। काम, क्रोध और अहंकार के गहरे विकारों से सतत विकृत रहने वाला मन अब प्रत्यक्षतः सुधरने लगा था। मैंने गुरुदेव के सामने अपने इन त्रि-दोषों की व्यथा व्यक्त की थी। उन्होंने बड़े वात्सल्य भाव से इनसे मुक्त होने का उपाय बताया। पहले ही शिविर में शरीर का अणु-अणु जाग्रत हो चुका था। शरीर का कोई भी भाग मूर्छित व अर्द्ध-मूर्छित नहीं रह गया था। सर्वत्र उदय-व्यय का बोध जगाने वाला चैतन्य अनुभव होने लगा था। गुरुदेव ने समझाया कि काम, क्रोध या अहं में से कोई सा भी विकार जागे तो तुरन्त होश जगा कर एक ओर विकार की विद्यमानता स्वीकार करते हुए उसे साक्षी भाव से देखने का प्रयत्न करो, दूसरी ओर उस समय शरीर पर जो भी संवेदना महसूस हो रही हो, उसे तटस्थ भाव से देखते रहो और दोनों के अनित्य और परिवर्तनशील स्वभाव को समझते रहो। संबंधित विकार की जड़ों पर प्रहार होना शुरू हो जाएगा; उसका उत्खनन और निष्कासन होना शुरू हो जाएगा। उन्होंने समझाया कि जीवित अवस्था में मन और शरीर का परस्पर अटूट संबंध रहता है। मन के विकारों का शरीर पर होने वाली संवेदनाओं से गहरा संबंध होता है। नये-नये साधक के लिए अमूर्त काम, क्रोध या अहंकार को साक्षी भाव से देख सकना सहज नहीं होता। परन्तु यदि सारा शरीर खुल गया हो, कहीं मूर्च्छा नहीं हो तो शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को तटस्थ भाव से देखना सरल हों जाता है। अमुक विकार जागा है, बस केवल इसी तथ्य को स्वीकार कर संवेदनाओं को देखना शुरू कर दें तो विकार बलहीन होकर निष्कासित होने लगता है। केवल बुद्धि के स्तर पर विकार दूर करने का कोई भी प्रयत्न करें तो मानस के ऊपरी-ऊपरी हिस्से पर से विकार भले दूर हो जाय, परन्तु शारीरिक संवेदनाओं के आधार पर उसे देखने लगें तो विकार की जड़ें उखड़ने लगती हैं, क्योंकि विकार की जड़ें शरीर की संवेदनाओं से जुड़ी रहती हैं। इसीलिए अन्य सभी पद्धतियों के मुकाबले विपश्यना विकार निष्कासन के प्रयोग में अधिक सफल होती है। गुरुदेव का दिया हुआ यह आदेश प्रयोग में लाने लगा। शरीर की संवेदनाओं को यथाभूत देखना बड़ा सरल हो गया था। इसी कारण विकारों से छुटकारा पाना भी बड़ा सरल हुआ। स्वभाव में बदलाव आना शुरू हुआ। यही विपश्यना विधि की सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण था। सन्देह के लिए कहीं कोई स्थान नहीं रह गया था। विकारों से छुटकारा पाते हुए स्वभाव में जो परिवर्तन आने लगा, वह स्वयं अपने आपको तो स्पष्ट महसूस होता ही था, घरवालों को और कार्यालय तथा कारखानों के कर्मचारियों को भी स्पष्ट दीखने लगा। बड़ा आत्म-संतोष हुआ।

माइग्रेन के सिर-दर्द के लिए भी शरीर पर होने वाली संवेदनाओं का यथाभूत दर्शन करना बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। पहले जब कभी माइग्रेन का आक्रमण होता था तो तुरंत सिर में एक प्रकार का तनाव सा महसूस होने लगता था। जरा सा तनाव आते ही तीव्र माइग्रेन आएगी, यह सोच कर मन अपना संतुलन खो बैठता था। आध घंटा बीतते-बीतते तो माइग्रेन इतनी तीव्र हो जाती थी कि डॉक्टर को बुला कर मॉर्फिया [अफीम] की इंजेक्शन लेने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता था। लगभग हर पन्द्रहवें दिन माइग्रेन का आक्रमण होता और उसकी चिकित्सा स्वरूप मॉर्फिया की सूई लेने का क्रम लगभग पांच-सात वर्षों से चल रहा था। अतः मॉर्फिया की सूई लेने से शरीर के भीतर क्या असर होता है, इसका अनुभव बड़ा स्पष्ट होने लगा था। मॉर्फिया जैसे ही शरीर में प्रवेश करती, सारे शरीर में और विशेष कर शरीर के कोमल अंगों पर एक प्रकार की झुनझुनी महसूस होने लगती थी। सिर का दबाव कम होने लगता था। सारा शरीर शिथिल होता जाता था और धीरे-धीरे नींद आ जाती थी। नींद से जब उठता तो माइग्रेन तो खत्म हो गया होता, परन्तु बड़ा जी मिचलाता, उल्टियां होतीं और परिणामस्वरूप शरीर और मन लगभग चौबीस घंटे तक काम करने लायक नहीं रहते। रोगी की तरह बिस्तर पर पड़े रहना पड़ता। यह मार्फिया का पश्चात्-प्रभाव था। विपश्यना के पहले शिबिर के पश्चात् जब जब माइग्रेन की घंटी बजती तो लेट कर शरीर की संवेदना देखने लगता। तब यह देख कर बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ कि मार्फिया लेने से सारे शरीर में और विशेषकर शरीर के कोमल अंगों में जो एक प्रकार की झुनझुनी हुआ करती थी, ठीक वैसी ही झुनझुनी उन्हीं अंगों पर बड़ी स्पष्ट मालूम होने लगती, वैसे ही सिर का तनाव निकलने लगता और थोड़ी ही देर लेटे रहने पर भला-चंगा होकर उठ खड़ा होता और अपने काम में लग जाता। मार्फिया के पश्चात्-प्रभाव से जो पीड़ाएं होती थी, उनसे छुटकारा मिला। मार्फिया का व्यसन लग जाने का जो भय था, वह दूर हुआ। रोग पर काबू पाना आसान हो गया। मुझे विपश्यना की दवा मिल गई। अब मॉर्फिया की सूई की आवश्यकता नहीं रही। यह विपश्यना की दवा बड़ी कल्याणकारिणी साबित हुई। मॉर्फिया लेने के बाद दूसरे दिन शरीर बड़ा दुर्बल और शिथिल हो जाया करता था। अब विपश्यना से मॉर्फिया के सारे लाभ तो मिले ही, साथ-साथ उसके दुष्प्रभावों से भी मुक्ति मिली। विपश्यना द्वारा माइग्रेन के दूर होते ही शरीर और मानस में बड़ी

सजगता और स्फूर्ति महसूस होती और मैं तुरंत अपने काम में लग जाता। विपश्यना मार्फिया का काम करने लगी; मॉर्फिया से कहीं बेहतर काम करने लगी। मॉर्फिया का पश्चात्-प्रभाव जितना दुःखदायी हुआ करता था, उसके मुकाबले विपश्यना का पश्चात्-प्रभाव उतना ही सुखदायी साबित होने लगा!

लेकिन यह तो विपश्यना का केवल एक उपफल मात्र था। मुख्य लाभ तो विकारों से मुक्ति पाने का था। गीता की स्थितप्रज्ञता की स्थिति का हजार चिंतन मनन करने पर भी विकार टस से मस नहीं हुए थे। जीवन के लगभग २०-२५ वर्ष गहन भक्ति के दौर में से गुजरे थे। उसने केवल थोड़ा-थोड़ा ऊपरी-ऊपरी लाभ पहुँचाया था। वह भी अल्प-काल के लिए ही और फिर वैसा का वैसा अथवा कभी-कभी तो उससे भी बदतर।

मुझे याद है, रोज सुबह-सुबह मैं अपने आपको एक कमरे में बन्द कर लिया करता था ताकि घर वाले जान न पायें कि मैं कैसी भक्ति करता हूं। उस बंद कमरे में अपने उपास्य देव के चित्र को कुछ देर निर्निमेष देखता हुआ धीरे-धीरे भजन गाने लगता था –

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहन चोलनो गल विषयन की माल ॥

...आदि-आदि। अथवा –

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जो तन दियो ताहि बिसरायो कै सो नमक हरामी ॥

...आदि-आदि। अथवा –

प्रभुजी मैं तो पतितन को सिरमौर ।

...आदि-आदि। अथवा –

प्रभुजी मेरे अवगुण चित न धरो ।

...आदि-आदि। अथवा –

प्रभुजी मैं तो थारो जी थारो ।
भूंडो बुरो कुटिल अर कामी जो भी हूं सो थारो।
आंगलियां नूं परै न होवै या तो आप बिचारो ॥

...आदि-आदि।

और इसी प्रकार के भजन गाते-गाते कंठ अवरुद्ध हो जाता और आध घंटे तक अश्रु-धारा बहती रहती। आंखें लाल हो जातीं। यही मेरी नित्य की नियमित भक्ति थी। इससे मन बड़ा हल्का हो जाता। लगता, अब मैं विकारों से मुक्ति पा रहा हूं।

जब कभी नरसी मेहता का यह भजन गाता –

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे।
पर दुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आने रे॥

...आदि-आदि।

तो लगता, मैं परम वैष्णव बनता जा रहा हूं। वैष्णव जन के जो सद्गुण गिनाये हैं, वे सब मुझमें उतर रहे हैं। मेरे मानस का बड़ा सुधार हो रहा है।

इस भावावेशमयी भक्ति का अच्छा प्रभाव रहता। प्रतिदिन पूर्वाह्न के कुछ घंटे अच्छे बीतते। परन्तु फिर दैनिक भाग-दौड़ में लग जाने पर सारा होश खो बैठता। वही क्रोध का तूफान, वही काम-वासना का ज्वार और वही अहं-भाव की अकड़न। विकारों के इस घिनौने दौर में से निकल कर फिर वही पश्चाताप, फिर वही आत्म-ग्लानि, फिर वही आत्म-धिक्कार और दूसरे दिन प्रातः फिर वही भजन, गायन और रोना-धोना; यही नित्य का क्रम। इससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं सूझता था। विपश्यना ने रास्ता सुझाया। प्रत्यक्ष परिणाम आने लगे, स्वभाव बदलने लगा। विकारों का आक्रमण अब भी होता पर इतना तीव्र नहीं होता था। होता तो भी शीघ्र होश आ जाता और संवेदनाओं को देखते-देखते उससे तुरन्त छुटकारा पा लेता। यही तो अपेक्षा थी, यही आकांक्षा थी। यही मन की एकमात्र मुराद थी जो पूरी हुए जा रही थी।

भक्ति के दौरान मैं अपने मन में सोचा करता था कि मैं सकाम भक्ति से निष्काम भक्ति की ओर मुड़ गया क्योंकि धन-दौलत, ऐश्वर्य-वैभव, यश-प्रसिद्धि अथवा अन्य किसी प्रकार की लौकीय कामनाओं की पूर्ति की मांग नहीं करता था। यहां तक कि अपने उपास्य के दर्शनों के लिए भी लालायित नहीं होता था। एकमात्र कामना यही थी कि मेरे मनोविकारों का खात्मा कैसे हो? मैं विकार-विमुक्त कैसे बनूं? बार-बार विकार जगा कर जिस अपराध-ग्रंथि को जटिल से जटिलतर बनाये जा रहा हूं, उससे छुटकारा कैसे पाऊं? लेकिन फिर बात समझ में आई, यह भी सकाम भक्ति ही है। अब मांगनी विकार-विमुक्ति की हो गयी। मांगना तो मांगना ही रहा। परन्तु मांगने से तो भीख भी नहीं मिलती। विकार विमुक्ति की यह ऊंची अवस्था मांगने से कहां मिलेगी भला!

वर्षों की प्रार्थनाएं, करुण-कातर कंठ के अनुनय-विनय, रुदन-क्रन्दन जो परिणाम नहीं ला सके; विपश्यना उसे सहज भाव से प्रत्यक्ष लाने लगी क्योंकि वह किसी से गिड़गिड़ा कर मांगने की साधना नहीं थी। स्वयं पुरुषार्थ करना था। विकारों को जगाने का काम स्वयं अपने अंधेपन में किया करता था। अब बात समझ में आई कि उसको दूर करने का काम भी स्वयं अपनी ज्ञान की आंखें खोल कर करना होगा। किसी दूसरे के भरोसे नहीं होगा। विपश्यना ने यही सिखाया।

अंधे को क्या चाहिए, दो आंखें, वही प्राप्त हो गईं –प्रज्ञा की आंखें, ज्ञान की आंखें। प्यासे को क्या चाहिए, दो घूंट पानी और वही प्राप्त हुआ। जन्म-जन्म की प्यास बुझाने के लिए अमृत की घूंट मिल गई। मन की सारी मुरादें पूरी हुईं। परिश्रम फलदायी हुआ। पुरुषार्थ मुक्तिदायी हुआ। जीवन धन्यता से भर गया। जीवन ने एक नया मोड़ ले लिया – बड़ा सुखद, बड़ा सार्थक, बड़ा कल्याणप्रद।

कल्याणमित्र,
स. ना. गो.